LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

4/6 (श्लोक 33-46), शनिवार, 10 मई 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/oIMFnuloc8Q

प्रकृति तीन गुणों के आधीन है

सुमधुर एवम् आत्मशुद्धि करने वाले कर्णप्रिय भगवत् भजनों के पश्चात् ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवं गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ भगवान श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवं दीपप्रज्वलन से हुआ।
आज के विवेचन सत्र में श्रीभगवान् के श्रीमुख से उच्चारित श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारहवें अध्याय का मनन-चिन्तन किया गया।

श्रीभगवान् ने स्वयं के समस्त सूत्रों को श्रीमद्भगवद्गीता जी के इस अध्याय में समाहित किया तथा अन्ततोगत्वा इस अध्याय के माध्यम से श्रीमद्भगवद्गीता जी को समापन की ओर ले गए।

इस विवेचन सत्र में अट्ठारहवें अध्याय के मध्यांश का चिन्तन किया गया।

श्रीमद्भगवद्गीता जी श्रीभगवान् के द्वारा गाया वह गीत है, जो उन्होंने विषादग्रस्त अर्जुन को पुनः युद्ध हेतु प्रेरित करने के उद्देश्य से समराङ्गण में उच्चारित किया। श्रीभगवान् की अमृत वाणी सदृश्य इस गीत के श्रवण मात्र से पार्थ कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हुए।

विश्व की वर्तमान परिस्थितियाँ महाभारत काल से तनिक भी भिन्न नहीं हैं। युद्ध के बादल आज भी मँडरा रहे हैं, अत: युद्ध में विजय प्रदान करने वाले इस ग्रन्थ की ओर हम ध्यान केन्द्रित करते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज जी ने श्रीमद्भगवद्गीता जी की महिमा गायी है, वे कहते हैं कि-

तैसा वाग्विलास विस्तारू ।
गीतार्थेसी विश्व भरूं ।
आनंदाचे आवारूं ।
मांडूं जगा ॥

"मैं अपनी वाणी का विस्तार इस प्रकार कर रहा हूँ कि सम्पूर्ण विश्व हेतु कल्याणकारी माँ श्रीमद्भगवद्गीता जी जन-जन तक पहुँचे"।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हम यह अनुभव करते हैं कि किस प्रकार Learngeeta.com के माध्यम से श्रीमद्भगवद्गीता जी की कक्षाएँ हमारे राष्ट्र में ही नहीं अपितु विश्व के अनेक राष्ट्रों में सुगमतापूर्वक सञ्चालित हो रही हैं। यह हमारे गुरुदेव जी के आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन से ही सम्भव हो सका है।

।।तो स्वानंद साम्राज्याचा चक्रवर्ती करी॥

श्रीमद्भगवद्गीता जी वह साधन हैं, जिनके मनन-चिन्तन से मनुष्य के भीतर स्वतः ही स्वानन्द की अविरल धारा प्रस्फुटित होती है। यह चिरस्थायी आनन्द है, जिस हेतु सृष्टि के किसी अन्य पदार्थ पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस आनन्दमयी वातावरण से जीव का अन्तरङ्ग पूर्णत: सराबोर हो जाता है।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता जी की सेवा करते हुए जीव उस स्वानन्द के साम्राज्य का चक्रवर्ती बन जाता है।
श्री ज्ञानेश्वर महाराज जी श्रीमद्भगवद्गीता जी की सुन्दर महिमा गाते हुए स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार से श्रीमद्भगवद्गीता जी उपदेश देते हुए हमें स्वयं के भीतर झाँकने हेतु बाध्य करती हैं। इसके द्वारा जीव उन त्रिगुणात्मक प्रभावों को जान पाता है जो मनुष्य के अन्त:करण पर पड़ते हैं।

सत्, रज, तम इन तीन गुणों की भिन्न-भिन्न अनुपात में उपस्थिति जीव के बहिरङ्ग को भी प्रभावित करती है।

सृष्टि के निर्माण में युक्त ये तीनों ही वे गुण हैं जो एक रस्सी की भाँति जीव को सांसारिक बन्धनों में बाँधते हैं। कर्मबन्धनों से मुक्त होना है तो जीव को इन्हें समझना होगा। मेरा व्यवहार ऐसा क्यों है? जब तक जीव यह नहीं समझ लेता तब तक उसके द्वारा बाह्य परिस्थितियों का आङ्कलन सम्भव नहीं है।

इस अध्याय का प्रारम्भ श्रीभगवान् त्याग से करते हैं। तत्पश्चात क्रमश: ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति एवं सुख की ओर अग्रसर होते हैं।

जीवन में सुख किसे नहीं भाता। राजा हो या रङ्क, समस्त अपने जीवन में सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हैं। जीव सामान्यतः देह एवं भोग जनित सुख को ही श्रेष्ठ समझते हुए, उस सुख की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयास करता है। उसे वास्तविकता से पूर्ण निर्बाध प्रवाहित होने वाले उस पारलौकिक सुख का आभास ही नहीं है, जो उसके जीवन पर्यन्त एवं मरणोपरान्त भी उससे युक्त रहने वाला है। जीव मात्र देहात्म सुख को परम सुख मानते हुए उसे जीवनपर्यन्त प्राप्त करने की चेष्टा करता है तथा बिसरा देता है कि यह भोग जनित सुख क्षणिक है क्योंकि उसकी देह निरन्तर परिवर्तनशील है एवं एक समय ऐसा आना है कि देह को पाँच तत्त्वों में विलीन हो जाना है।

किस जीव को किस प्रकार के सुख की अपेक्षा है यह उसकी त्रिगुणात्मक प्रकृति पर निर्भर करता है अर्थात् सत्, रज एवं तम का विभिन्न अनुपातों में मिश्रण, प्रत्येक जीव में उसकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति को जन्म देता है, जिसके प्रभावनुसार जीव भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों को आत्मसात करता है।

श्रीभगवान् द्वारा बताए गए सुख मुख्यतः तीन प्रकार के हैं, जो सृष्टि की त्रिगुणात्मक प्रकृति पर आश्रित हैं।

18.33

धृत्या यया धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या, धृतिः(स्) सा पार्थ सात्त्विकी॥18.33॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन- धृति शब्द का अर्थ धैर्य है। धृति के दो अर्थ होते हैं- साहस तथा धैर्य।

श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! धृति भी तीन प्रकार की होती है। मनुष्य के जीवन में कभी गलत धारणा भी हो जाती है।

यक्ष के सौ प्रश्न हैं जिनके उत्तर धर्मराज युधिष्ठिर ने एक-एक वाक्य में दिये। उनसे पूछा गया कि "अकेले का साथी कौन है?"

उन्होंने कहा-

"धृत्या द्वितीया भवति"

अर्थात् धृति मनुष्य की अकेलेपन की साथी है।

श्रीभगवान कहते हैं, "हे पार्थ! व्यभिचार न करते हुए जो धृति और धैर्य द्वारा अपने मनोबल, प्राण तथा इन्द्रियों को धारण करता है, वह सात्त्विक धृति वाला कहलाता है।"

जब अर्जुन दिव्यास्त्र लेने के लिए स्वर्ग में गये, वे उर्वशी का नृत्य देखते हुए, उनके पग देख रहे थे। उन्हें उसमें अपनी माता के पग से समानता दिखी। उन्होंने सोचा कि उर्वशी मेरे सारे वंश की जननी हैं। उर्वशी को लगा कि वे उन पर सम्मोहित हो गये हैं। वह रात्रि में उनके पास गयी तो उन्होंने उर्वशी को माँ सम्बोधित किया। उर्वशी ने उन्हें नपुंसकता का श्राप दिया। अज्ञातवास के समय अर्जुन ने बृहन्नला के रूप में उस श्राप को भुगता, लेकिन धैर्य नहीं खोया।

18.34

यया तु धर्मकामार्थान्, धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी, धृतिः (स्) सा पार्थ राजसी॥18.34॥

हे पार्थ! समता से युक्त जिस अव्यभिचारिणी धृति के द्वारा (मनुष्य) मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है अर्थात् संयम रखता है, वह धृति सात्त्विकी है।

विवेचन-श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! कुछ धृति धर्म, अर्थ और काम फलाकाङ्क्षा के लिए की जाती है, ऐसी धृति राजसी धृति कहलाती है।"

किसी की सम्पत्ति प्राप्त करने की धारणा भी बहुत बड़ी हो सकती है।

18.35

यया स्वप्नं(म्) भयं(म्) शोकं(म्), विषादं(म्) मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा, धृतिः(स्) सा पार्थ तामसी॥18.35॥

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य जिस धृति के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख और घमण्ड को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है, वह धृति तामसी है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "तीसरी प्रकार की धृति दुर्मेधा धृति होती है, जो स्वप्न, भय, शोक, विषाद, उन्मत्तता को छोड़ना ही नहीं चाहती।"
मनुष्य की गलत बातें धारण करने की भी एक क्षमता होती है। वह इन सबसे निकलना ही नहीं चाहता। ऐसे व्यक्ति पुरानी बातों का शोक करते रहते हैं तथा भविष्य की चिन्ता करते रहते हैं।

सत्त्व, रज तथा तम, इन सारी बातों का विश्लेषण करते हुए मनुष्य को अन्ततोगत्वा सुख ही चाहिए होता है।

18.36

सुखं(न्) त्विदानीं(न्) त्रिविधं(म्), शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र, दुःखान्तं(ञ्) च निगच्छति॥18.36॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! अब तीन प्रकार के सुख को भी (तुम) मुझसे सुनो। जिसमें अभ्यास से रमण होता है और (जिससे) दुःखों का अन्त हो जाता है, ऐसा वह परमात्म-विषयक बुद्धि की प्रसन्नता से पैदा होने वाला जो सुख (सांसारिक आसक्ति के कारण) आरम्भ में विष की तरह (और) परिणाम में अमृत की तरह होता है, वह (सुख) सात्त्विक कहा गया है। (18.36-18.37)

विवेचन- इस अध्याय में त्याग से प्रारम्भ कर श्रीभगवान् इस श्लोक में सृष्टि की त्रिगुणात्मक शक्ति पर आधारित सुखों को वर्णित करते हैं। सर्वप्रथम हम त्याग को समझ लें।

त्याग क्या है?

जीव जिस माध्यम से सुख प्राप्त करने हेतु उत्सुक है, अन्त:करण में जिस साधन से सुख की अनुभूति होती है और जब जीव अपने सुख का वह कारण अन्य जीवों से साझा करते हुए, उनमें वितरित करने हेतु प्रयासरत होता है तब वह त्याग कहा जाता है। स्वयं के द्वारा किए गए उस त्याग से जीव को जिस परम सुख की अनुभूति होती है, किसी जीव हेतु वही सच्चा सुख है।

जैसे जब हम श्रीमद्भगवद्गीता जी का पठन, पाठन, मनन, चिन्तन करते हैं तब हमे जो आत्मीय आनन्द की अनुभूति होती है, यदि हम उसी अनुभूति को अन्य जीवों में वितरित करें तब जो आत्मीय प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि हमें प्राप्त होगी वह अभूतपूर्व होगी।

अन्तर्मन की यही प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि ही जीव हेतु सात्त्विक सुख है। अन्य जीवों के सुख, उनकी प्रसन्नता हेतु जो कार्य कष्ट उठा कर किये जाते हैं, वही सात्त्विक त्याग हैं।

गुरुदेव जी इस श्लोक में आए शब्द अभ्यास का अर्थ आदत बताते हैं।

हम समस्त मनुष्य अपनी कोई न कोई आदत निर्मित कर लेते हैं तथा अपनी उन आदतों को जकड़े रखना चाहते हैं क्योंकि धीरे-धीरे उन्हीं आदतों से हमें सुख की अनुभूति होने लगती है, जैसे किसी मदिरा पीने वाले व्यक्ति की मदिरापान की आदत, भजन-कीर्तन, गाने की आदत, श्रीमद्भगवद्गीता जी के पठन-पठान की आदत आदि ये समस्त आदतें मनुष्य के दुःखों का अन्त करने हेतु सहायक सिद्ध होती हैं। इन आदतों को जीवन में लाने हेतु प्रारम्भ में उनका अभ्यास करना होता है।

आदत को हम अङ्ग्रेजी में habit कहते हैं। जिसमें से h निकलने पर a bit हो जाता है। a निकलने पर bit हो जाता है तथा b निकालने पर it हो जाएगा। अत: कभी-कभी किसी आदत के कारण मनुष्य निर्बल भी अनुभव करता है।

किसी मनुष्य की कोई भी आदत सृष्टि के उन तीन गुणों से सदैव प्रभावित होती है जो क्रमश: सत्त्व, रज एवं तम हैं।

त्रिगुणात्मकता के प्रभाववश मनुष्य का स्वभाव सदैव ही इन तीनों गुणों की भिन्न-भिन्न मात्राओं से परिपूर्ण एवं आच्छादित होने के परिणामस्वरूप, श्रीभगवान् ने सुखों को भी तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया है।

सात्त्विक, राजसी एवं तामसी।

सुख क्या है?

सुख का शाब्दिक अर्थ यहाँ जान लेते है। सुख शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों से हुई है- सु अर्थात् अच्छा, ख अर्थात् इन्द्रियाँ।

वास्तविकता में जीव की इन्द्रियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच कर्मेन्द्रियों में विस्तारित हैं।

इन इन्द्रियों के कारण ही कोई जीव सुख एवं दुःख का अनुभव करता है ।

अपनी आनुवंशिकी एवं उस पर तीनों गुणों के प्रभाव भिन्न-भिन्न होने के कारण समस्त जीव निश्चित ही एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। उनमें उपस्थित भिन्नता को हम चाह कर भी परिवर्तित नहीं कर सकते, अत: यही तीनों गुण मनुष्य के आचार-विचार, व्यवहार, स्वभाव एवं उसका आचरण निर्धारित करते हैं।

इन तीनों गुणों का भिन्न अनुपात में किसी मनुष्य के अन्त:करण में आच्छादन ही, उसके द्वारा किए जाने वाले किस कार्य में उसे सुख की अनुभूति होगी, इस को निर्धारित करता है।

18.37

यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं(म्) सात्त्विकं(म्) प्रोक्तम्, आत्मबुद्धिप्रसादजम्॥18.37॥

विवेचन-

सात्त्विक सुख एवं उसकी जीवन में अविरल धारा।

अग्रे अर्थात् आरम्भ में, विषमिव अर्थात् विष के सदृश्य। श्रीभगवान् का तात्पर्य इस श्लोक में यह है कि जो मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों को प्रारम्भ में विष जैसे प्रतीत होता है परन्तु अन्त में अमृत के सदृश्य है तथा जो मनुष्य में आत्मसाक्षात्कार जागृत करता है, वह सात्त्विक सुख कहलाता है। यह सुख जीव की आत्मा, उसकी इच्छाशक्ति को बलिष्ठ बनाता है।

ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में कष्ट एवं उसके सुखद परिणाम-

किसी भी विद्या का अभ्यास प्रारम्भ में मनुष्य को कष्ट दायक प्रतीत हो सकता है परन्तु अन्तोगत्वा सुखद परिणाम देने वाला होता है।
श्रीमद्भगवद्गीता जी को उच्चारित करते हुए कई बार श्रीभगवान् अपने सखा, परम भक्त अर्जुन को गुडाकेश कह कर सम्बोधित करते हैं।

श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन को गुडाकेश सम्बोधन-

श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन हेतु किया गया यह सम्बोधन मात्र ही नहीं है अपितु उसके पीछे है अर्जुन द्वारा किया गया वह तप, जिसने उन्हें निद्रा पर विजय प्राप्त करने की क्षमता प्रदान की, जिसके चलते रात्रि में भी धनुर्विद्या का अभ्यास कर वे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बने। उनकी यह साधना भी प्रारम्भ में कष्टदायक रही होगी, परन्तु कुछ समय पश्चात वरदान सिद्ध हुई।

उसी प्रकार अनेकानेक मनुष्य जो कष्टों की उपस्थिति होने पर भी भिन्न-भिन्न साधनाओं में सङ्लग्न हैं, जैसे किसी का अपनी आजीविका हेतु प्रयत्न, कोई क्रिकेट आदि विभिन्न क्रीड़ाओं में अभ्यासरत है, कोई प्रातः शीघ्र जागकर योगाभ्यास, सङ्गीत, ज्ञान आदि के अभ्यास में सङ्लग्न है।
ये समस्त क्रियाएँ किसी साधक के लिए प्रारम्भ में अत्यन्त कष्टकारी, विषमिव होती हैं, परन्तु जिस क्षण इनके अभ्यास में मनुष्य को सफलता प्राप्त होती है तत्क्षण अन्त:करण की वह अनुभूति, वह प्रसन्नता अभूतपूर्व होती है।

वे चाहते तो अन्य की भाँति अपनी इन विषमिव इच्छाओं का त्याग कर, विश्राम भी कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा कदापि न विचार किया तथा वे लौकिक अथवा अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहे। सकारात्मक विचारों को धारण किए

हुए समस्त कार्य प्रारम्भ में कष्टदायी तो प्रतीत हो सकते है परन्तु कुछ समय पश्चात शुभ परिणाम प्रदान करते हैं।

महापुरुषों द्वारा सात्त्विक सुख की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास-

हमारे समस्त महापुरुष इस सात्त्विक सुख की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयासरत रहते हैं तथा इसके चलते वे अपने जीवन में अनगिनत कष्टों को भी सहन करते हैं।

हमारे समक्ष ऐसे ही महापुरुष हैं **वासुदेवानन्द सरस्वती महाराज**, जो भगवान् दत्तात्रेय को अपना ईष्ट मानते हैं तथा जीवन में सात्त्विकता एवं आध्यात्मिकता हेतु वे निरन्तर कठोर तपस्या करते हैं। वे भोजन भी भिक्षा माँग कर प्राप्त करते हैं। उस भिक्षा में प्राप्त भोजन के वे चार भाग कर, प्रथम भाग को नदी आदि में विसर्जित कर देते हैं ताकि जल में रहने वाले प्राणी उन्हें ग्रहण कर सकें, एक भाग गौमाता तथा तीसरा भाग मन्दिर में दान कर चौथे भाग को भी जल में भिगो कर अपने भोजन स्वरूप ग्रहण करते हैं।

इन्द्रियों के निग्रह सहित यह एक कठिन तप है। आत्मनियन्त्रण हेतु यह तपमय जीवन, जो अत्यन्त कष्टमय होता है, हमारे सन्त, योगीजन अपनाते हैं।

गुरुदेव जी का एक सुन्दर वाक्य है-
कष्ट सहकर भी स्वयं इस विश्व का कल्याण कर जा।
छोड़ कर पद चिह्न अपने तीर्थ का निर्माण कर जा।

वर्तमान में भी गुरुदेव जब हवाई यात्रा करते हैं या कार में यात्रा करते हैं तब यात्रा के दौरान ही वे विश्राम करते हैं। उनके द्वारा चालीस वेद-विद्यालयों का निर्माण किया गया है। वे राम मन्दिर निर्माण में निर्विघ्नता से निरन्तर प्रयासरत हैं। राष्ट्र निर्माण, विश्व कल्याण उनकी सर्वप्रथम प्राथमिकता है। सन्तों, योगियों का यह आत्मनियन्त्रण से पूर्ण कष्टमय जीवन उनके स्वयं हेतु न होकर सम्पूर्ण विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

ऐसा सुख जो हमारे मन, मस्तिष्क को शान्त कर, हमें प्रसन्नता प्रदान करे, सात्त्विक होगा। सुख कहलाता है।

अनुष्ठान, व्रत, पारायण आदि हमारी वैदिक संस्कृति के अभिन्न अङ्ग रहे हैं। कोई कहे की इनका क्या महत्त्व है?

मनुष्य की आत्मा को शक्ति प्रदान करने वाले यह समस्त कार्यकलाप मनुष्य में आत्मनियन्त्रण की इच्छाशक्ति जागृत करते हैं तथा आत्मा की यही सन्तुष्टि ही सात्त्विक सुख की आधारशिला रखती है। जो अनवरत है, अविरल तथा अक्षय है।

श्रीभगवान् यहाँ केवल सात्त्विक सुख का विवरण ही नहीं देते अपितु दो अन्य गुण राजसी एवं तामसी भी वर्णित करते हैं जो त्रिगुणात्मकता के प्रभावस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न हैं। जिसे स्वयं मनुष्य को अपने भीतर देखते हुए जानना होगा।

ग़ालिब का एक बेहद ही सुन्दर शेर है-

ज़िन्दगी भर ग़ालिब एक गलती करता रहा।
धूल चेहरे पर थी और आईना पोंछता रहा ।।

स्वयं के मुख पर उपस्थित धूल को हटाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि हम अपने जीवन मार्ग में चलते हुए सात्त्विक प्रवृत्ति सहित स्वयं को श्रीभगवान् के साथ सङ्लग्न कर सकें। यह भी सम्भव है कि हमारा अनुसरण कर हमारे ही घर वाले ईश्वर प्राप्ति के उस मार्ग की ओर अग्रसर हो जाएँ। यह समस्त जीवों का सौभाग्य ही होगा।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्, यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव, तत्सुखं (म्) राजसं (म्) स्मृतम्॥18.38॥

जो सुख इन्द्रियों और विषयों के संयोग से (होता है), वह आरम्भ में अमृत की तरह (और) परिणाम में विष की तरह प्रतीत होता है, वह (सुख) राजस कहा गया है।

विवेचन-

रजोगुणी सुख के लक्षण

जो सुख इन्द्रियों द्वारा उनके विषयों के संसर्ग से प्राप्त होता है तथा जो प्रारम्भ में अमृततुल्य एवं अन्त में विषतुल्य प्रतीत होता है, वह रजोगुणी सुख कहलाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि-

आणि अपेयाचेनि पानें ।
अखाद्याचेनि भोजनें ।
स्वैरस्त्रीसंनिधानें ।
होय जें सुख ॥

अर्थात्
जो जल नहीं ग्रहण करना चाहिए, जो भोजन नहीं लेना चाहिए तथा स्वयं के आचरण को संयमित न रखते हुए किये गये कार्यों में प्रारम्भ में तो मनुष्य को निश्चित ही उन समस्त पदार्थों में, स्वयं के अविवेक के कारण सुख प्रतीत होता है परन्तु कुछ समय पश्चात वही सुख, उसके दुःख, क्षोभ का भी कारण बन जाता है।

भोजन में राजस गुण व उसके परिणाम-

हमें जङ्क फूड अच्छा लगता है, हमारी जिह्वा उसका स्वाद ग्रहण करती है तथा हमें उस क्षण आनन्द की अनुभूति होती है, परन्तु अपने इस क्षणिक सुख हेतु हम स्वयं को कष्ट प्रदान कर रहे हैं, उसकी अनुभूति हमें कुछ समय पश्चात, हमारे ही शरीर में विभिन्न रोगों के माध्यम से होती है।

इन्द्रिय विषयों की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता-

हमारी पाँच इन्द्रियाँ, पाँच विषयों का भोग करती हैं। इन्द्रियों हेतु विशेष यह विषय भी दो श्रेणियों में विभाजित है- अनुकूल एवं प्रतिकूल।

कर्ण हेतु श्रवण, नेत्रों हेतु देखना, नासिका हेतु सुगन्ध, त्वचा हेतु स्पर्श, जिह्वा हेतु स्वाद विषय हैं।

जब समस्त विषय अनुकूल हों तब इन्द्रियाँ स्वतः ही सुख का अनुभव करती हैं परन्तु यह सुख क्षणिक होता है। इसके विपरीत प्रतिकूल विषयी भोगों से इन्द्रियाँ दुःख का अनुभव करती हैं।

उदाहरण- प्रतिकूल इन्द्रिय विषय एवं उनके प्रभाव-

जिस प्रकार एक माँ अपने बालक को रोग मुक्त करने के उद्देश्य से औषधि देती है। यह औषधि स्वाद में कड़वी होने के कारण प्रारम्भ में जिह्वा को प्रतिकूल लगती है परन्तु रोगी को शीघ्रता से स्वस्थ करती है।

जबकि जङ्क फूड आदि जो स्वस्थ हेतु हानिकारक होते हैं, हमारी इन्द्रियों को भाते हैं।

सत्रहवें अध्याय में तमोगुणी भोजन के विषय में श्रीभगवान् कहते हैं कि-

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥

अर्थात्
अत्याधिक कड़वे, खट्टे, नमकीन, गर्म, तीखे, शुष्क तथा मिर्च युक्त दाहकारक व्यञ्जन रजो गुणी व्यक्तियों को प्रिय लगते हैं ऐसे भोज्य पदार्थों के सेवन से पीड़ा, दुःख तथा रोग उत्पन्न होते हैं।

तुकाराम महाराज जी का एक प्रसङ्ग यहाँ स्मरण हो आता है-
शिवाजी महाराज तुकाराम महाराज को अपना गुरु मानते हुए उनके परिवार हेतु नवीन वस्त्र एवं आभूषण भेजते हैं। उनके परिवार के सदस्य इससे पूर्व पुराने, क्षीण हो चुके वस्त्रों का उपयोग कर रहे थे। जब शिवाजी महाराज ने वस्त्र, आभूषण भेजे तब उनकी पत्नी एवं बालकों ने उन्हें ग्रहण कर लिया। कुछ समय पश्चात् वहाँ तुकाराम महाराज आते हैं तथा अपनी पत्नी एवं बालकों को उन नवीन, भव्य वस्त्रों में देख अचम्भित हो, वे कहाँ से प्राप्त हुए ऐसा प्रश्न करते हैं?

समीप खड़े राजा के कर्मचारी उन्हें सम्पूर्ण घटना से अवगत कराते हैं तब तुकाराम महाराज उनसे अपने परिवार को दिए गए उपहार को पुनः वापस ले जाने हेतु आग्रह करते हैं।

रजोगुणी स्वभाव में वृद्धि के परिणाम- क्रोध एवं अशान्ति।

अपने परिवार को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि आज हमें यह सुख प्रतीत होगा, परन्तु शनैः-शनैः हम इन भौतिक पदार्थों के आदि हो उन्हें प्राप्त करने हेतु उनके पीछे जाएँगे। धीरे-धीरे हमारी इच्छाओं में वृद्धि होती जाती है, जिसका कि मनुष्य अनुमान ही नहीं कर पाता। भौतिक पदार्थ प्राप्त करने की इच्छा इतनी प्रबल होती जाती है कि उसे प्राप्त न कर पाने का दुःख सदैव मन को अशान्त बनाये रखता है तथा यह अशान्ति, क्रोध में परिवर्तित हो जीवन को विष सदृश्य कर देता है।

श्रीभगवान् द्वारा वर्णित तीसरे सुख को ज्ञानेश्वर महाराज सुख ही नहीं मानते।

18.39

यदग्रे चानुबन्धे च, सुखं(म्) मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्॥18.39॥

निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होने वाला जो सुख आरम्भ में और परिणाम में अपने को मोहित करने वाला है, वह (सुख) तामस कहा गया है।

विवेचन-

तमोगुण जनित सुख के लक्षण-

जो व्यक्ति सुख आत्म-साक्षात्कार के प्रति नेत्रहीन है अर्थात् वह व्यक्ति जो देह जनित सुख को ही परम सुख मान अपना जीवन व्यतीत करता है। जो मदिरापान को या आलस्य में निरन्तर रहने को सुख मान लेता है।
जो सुख प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मोहकारक है एवं जो निद्रा, आलस्य तथा मोह से उत्पन्न होता है, ऐसा सुख तामसी सुख कहलाता है।

तमोगुणी प्रभाव-

चावल सड़ा कर मदिरा निर्मित कर तथा उसका पान कर निद्रासीन रहना कुछ मनुष्यों का जीवन बन जाता है, वे उसी अवस्था में रहना सुखकारी समझते हैं।

सत्, रज, तम का रामायण के पात्रों द्वारा स्पष्ट वर्गीकरण-
रामायण के तीन पात्रों के उदाहरण द्वारा सत्त्व, रज एवं तमोगुण को उचित प्रकार समझा जा सकता है-

कुम्भकर्ण- तमोगुण से युक्त कुम्भकर्ण सदैव निद्रासीन रहने में
ही सुख का अनुभव करता था। उसने ब्रह्मा जी से निद्रा का ही वरदान माँगा।

रावण- रजोगुण से युक्त रावण सदैव यशस्वी बनना चाहता था। वह दूसरों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर अवैध प्रकार से उनकी वस्तुएँ छीनना चाहता था।

विभीषण- वे प्रवृत्ति से सात्त्विक हैं। ईश्वर का नाम स्मरण करना, जप, पूजा, अर्चना आदि में ही उन्हें सुख की प्राप्ति होती है।

यह सृष्टि तीनों गुणों से आच्छादित है तथा कोई भी अणु ऐसा नहीं है जिसमें यह तीनों गुण उपस्थित न हों।

18.40

न तदस्ति पृथिव्यां(म्) वा, दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं(म्) प्रकृतिजैर्मुक्तं(म्), यदेभिः(स्) स्यात्त्रिभिर्गुणैः॥18.40॥

पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवाय और कहीं भी वह (ऐसी कोई) वस्तु नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो।

विवेचन-

।।सृष्टि त्रिगुणात्मक है।।

तीनों गुणों का मनुष्य पर प्रभाव-

परमात्मा द्वारा निर्मित यह संसार स्वयं की उत्पत्ति के समय से ही इन तीनों गुणों से आच्छादित है। प्रकृति में कोई ऐसा पदार्थ या कण मात्र भी नहीं है, जो इन तीनों गुणों के प्रभाव में न हो।

कण-कण में प्रकृति की त्रिगुणात्मकता का प्रभाव-

परमाणु पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई है, जिसमें इलेक्ट्रॉन जो न्यूक्लियस के चारों ओर अपनी कक्षा में परिक्रमा करते हैं, सर्वाधिक गतिशील होते हैं, जिस कारण वे रजोगुण का द्योतक हैं।

इसी प्रकार परमाणु की नाभि में पाए जाने वाले प्रोटॉन सकारात्मक ऊर्जा से युक्त होने के कारण सतोगुण का एवं न्यूट्रान जो नकारात्मक ऊर्जा से युक्त हैं तमोगुण का प्रतीक हैं।

इस प्रकार एक परमाणु में तीनों गुण विद्यमान हैं।

देवों आदि का तीनों गुणों से युक्त होना-

इस प्रकार इस लोक में, स्वर्ग लोकों में या देवताओं के मध्य में कोई भी ऐसा व्यक्ति विद्यमान नहीं है, जो प्रकृति के तीनों गुणों से

मुक्त हो।

भोजन, पेय पदार्थों पर सत्त्व, रज व तमोगुण का प्रभाव-

भोजन सहित हमारे पेय पदार्थ भी तीनों गुणों की विभिन्न अनुपातों में उपस्थिति के कारण सात्त्विक, राजसी एवं तामसी होते हैं, जैसे दूध एक सात्त्विक पेय है।

इसी प्रकार राजसी पेय वे होते हैं जो मनुष्य के रजोगुण में वृद्धि करते हैं तथा मदिरा, नशे के पदार्थ आदि तामसी माने जाते हैं।

इन तीनों गुणों से प्रकृति बँधी हुई है।

इन्हीं तीनों गुणों के आच्छादन के कारण चारों वर्णों का निर्माण होता है, जिसे आगे आने वाले श्लोकों में श्रीभगवान् वर्णित करते हैं।

18.41

ब्राह्मणक्षत्रियविशां(म्), शूद्राणां(ञ्) च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि, स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥18.41॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनों गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।

विवेचन- हमारी सनातन संस्कृति में चार वर्ण बताए गए हैं जो व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर आधारित हैं। उनके द्वारा किए जाने वाले ये कर्म तीनों गुणों से युक्त होते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों में प्रकृति के गुणों के अनुसार, उनके स्वभाव द्वारा उत्पन्न गुणों के द्वारा भेद किया जाता है।

हमारी वैदिक परम्परा सोलह स्तम्भों पर स्थापित है। वे हैं-

- **चार पुरुषार्थ**- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
- **चार वर्ण-** ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र
- **चार आश्रम**- ब्रहचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास
- **चार साधना मार्ग**- ज्ञान, भक्ति, कर्म एवं योग

गुरु महाराज गोविन्द गिरि जी के अनुसार शूद्र शब्द यहाँ श्रमजीवियों हेतु प्रयुक्त हुआ है।

मानव स्वभाव का निर्माण-

सोलह स्तम्भों से युक्त हमारी संस्कृति सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति है जहाँ श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं कि तीनों गुणों के प्रभाव के कारण जीव द्वारा सम्पादित विशिष्ट कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य का स्वभाव निर्मित होता है तथा इसी स्वभाव के वशीभूत हो मनुष्य अपने जीवन में कर्मों का सञ्चालन करता है।

आनुवंशिकी एवं वातावरण आधारित मनुष्य स्वभाव-

मनुष्य के स्वभाव का निर्माण आनुवंशिक होने के साथ ही वातावरण पर भी निर्भर करता है, जो कि तीनों गुणों के वशीभूत होते हैं।

मनुष्य के स्वभाव पर आधारित कर्म निम्न हैं:

- **ब्राह्मण-** ज्ञान शक्ति,
- **क्षत्रिय-** बाहुबल,
- **वैश्य-** धन शक्ति,
- **शुद्र -** तन्त्रोपजीवी।

सम्पूर्ण सृष्टि के सञ्चालन हेतु ये चारों शक्तियाँ आवश्यक हैं। किसी भी राष्ट्र या फैक्ट्री की उन्नति हेतु शोध कार्यों, प्रबन्धन, सीमाओं के रक्षार्थ शौर्य शक्ति, समस्त विकास कार्यों हेतु धन एवं सेवार्थ श्रमजीवियों की आवश्यकता होती है, अत: इनके बिना किसी राष्ट्र या किसी भी व्यवसायिक संस्थान की कल्पना भी असम्भव है।

समस्त वर्णों की एक-दूसरे पर निर्भरता-

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमारी सेना अपने पराक्रम का परिचय देते हुए पूर्ण साहस से शत्रु राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध हेतु तत्पर है तथा हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के माध्यम से ज्ञानार्जन में संलिप्त हैं। हम सभी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। मनुष्य कदापि अकेले जीवन व्यतीत कर ही नहीं सकता है क्योंकि वह इन समस्त वर्णों पर निर्भर हैं।

स्वभावगत विशेषता आधारित कर्म-

त्रिगुणात्मक होने के कारण मनुष्य इन तीनों गुणों के प्रभाववश ज्ञान की आराधना, शौर्य की, धन की प्राप्ति हेतु या सेवार्थ कार्य करता है। यही उसके स्वभावगत कर्म बन जाते हैं।

गुरुदेव कहते हैं कि मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुरूप ही कर्म का चयन करना चाहिए, यही उसके हेतु श्रेयस्कर होगा।

18.42

शमो दमस्तपः(श्) शौचं(ङ्), क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं(म्), ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥18.42॥

मन का निग्रह करना, इन्द्रियों को वश में करना; धर्मपालन के लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतर से शुद्ध रहना; दूसरों के अपराध को क्षमा करना; शरीर, मन आदि में सरलता रखना; वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना; यज्ञविधि को अनुभव में लाना; और परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना - (ये सबके सब ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

विवेचन-

ब्राह्मण धर्म-

परमात्मा की प्राप्ति हेतु तथा अन्त:करण की शुद्धि हेतु जो कर्म किए जाते हैं, वे ब्रह्म कर्म कहलाते हैं।

जन्म से ब्राह्मण नहीं अपितु कर्म से ब्राह्मण होना-

जन्म से ब्राह्मण मनुष्य में यह आवश्यक नहीं कि वे समस्त गुण विद्यमान हों जो एक ब्राह्मण में होने चाहिए। जिस व्यक्ति ने ब्राह्मण परिवार में जन्म तो लिया है परन्तु स्वभाव से वह भ्रष्टाचारी, दुराचारी, व्यभिचारी है तब ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण कैसे हो सकता है?

ब्राह्मण हेतु श्रीभगवान् द्वारा वर्णित लक्षण इस प्रकार हैं-

शान्तिप्रियता- वह मनुष्य जो शान्ति प्रिय है अर्थात् अकारण विवादों में न पड़कर मात्र परमात्मा की प्राप्ति हेतु निरन्तर

प्रयत्न करता है।
आत्मसंयम- इन्द्रिय निग्रह। इन्द्रियों के दमन से ही मन की शान्ति सम्भव है।
तपस्या- जब हम कोई अनुष्ठान करते हैं तब प्रातः उठकर स्नान आदि कर, व्रत करना शारीरिक तप है।

तपोद्वन्द्व सहनम्।

पवित्रता- बाह्य सहित अन्त:करण की शुद्धता।
सहिष्णुता- क्षमा करने की प्रवृत्ति।

ज्ञानेश्वर महाराज के जीवन की एक घटना-

एक संन्यासी होने के कारण किस प्रकार से समाज ने उन पर अत्याचार किए? उनका उपनयन संस्कार भी न हो सका।

उनके माता-पिता को देहान्त प्रायश्चित्त का दण्ड दिया गया। नन्हें बालक आठ, दस, बारह, अट्ठारह की आयु में माता-पिता के छत्र से वञ्चित रह गए। उन्हें इतना समाज ने विष दिया। उसके पश्चात् भी ज्ञानेश्वर महाराज ने समस्त दोषियों को क्षमा कर दिया। ऐसे ही शुद्ध, अनाक्रोशित अन्त:करण में ज्ञान व्याप्त होता है। यह उनके द्वारा निर्मित ओवियों में स्पष्ट प्रतिलक्षित होता है।

आर्जवम्- सरलता (छल-कपट, दिखावे से परे) व **सत्यनिष्ठा** का उन्होंने सदा पालन किया।

तैसी अनक्रोश क्षमा
जयापाशी प्रियोत्तमा
जाण तेथे महिमा ज्ञानाचा गा
ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अन्त:करण स्फटिक की भाँति होना चाहिए, जिसके भीतर दीपक रखने पर जो समस्त दिशाओं को देदीप्यमान कर दे, प्रकाशित कर दे।

श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन हेतु अनघ सम्बोधन-

अर्जुन भी उसी प्रकार पूर्णतः पाप रहित अनघ हैं, जिनका अन्त:करण श्रीमद्भगवद्गीता जी के ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित हुआ है।

विशेष बिन्दु-

निष्ठा एवं सकारात्मकता सहित ऐसे ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता- ये समस्त स्वाभाविक गुण हैं, जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्म करते हैं।

परमात्मा की प्राप्ति हेतु तथा अन्त:करण की शुद्धि हेतु जो कर्म किए जाते हैं, वे ब्रह्म कर्म कहलाते हैं।

18.43

शौर्यं(न्) तेजो धृतिर्दाक्ष्यं(म्), युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं(ङ्) कर्म स्वभावजम्॥18.43॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का

भाव - (ये सबके सब) क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म है

विवेचन-

क्षत्रिय धर्म-

वीर पुरुष की स्वभावगत विशेषताएँ जिसके कारण वर्तमान में हमारे राष्ट्र के सैनिक दुश्मन राष्ट्र से लोहा लेते हुए, उनके दाँत खट्टे कर रहे हैं, जिसके चलते आज हम सुरक्षित अपने राष्ट्र की सीमाओं के भीतर श्रीमद्भगवद्गीता जी का विवेचन, चिन्तन जान पा रहे हैं।

क्षत्रिय गुण-

वीरता,
शक्ति,
सङ्कल्प,
दक्षता,
युद्ध में धैर्य,
उदारता तथा
नेतृत्व-ये क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण हैं।

अर्जुन का विषाद त्याग युद्ध हेतु तत्पर होना क्षत्रिय धर्म का परिचायक है-

जिस प्रकार अर्जुन युद्ध नहीं करना चाह रहे थे तब श्रीभगवान् ने उन्हें श्रीमद्भगवद्गीताजी के रूप में, उनका विषाद समाप्त करने हेतु उपदेश दिए।

समस्या से पीछे हटना कोई समाधान नहीं है। चाहें युद्ध हो या जीवन में आने वाली चुनौतियाँ, उनका एक वीर योद्धा की भाँति सामना करना चाहिए।

समस्या की गहराई तक जाते हुए, निश्चित ही उसका समाधान जानने हेतु प्रयास करना ही सच्ची वीरता है।

भारतीय नारियों में वीरता एवं शौर्य

स्त्रियों में भी वीरता के ये गुण निश्चित ही उपस्थित होते हैं, इसका एक जीवन्त उदाहरण रानी पद्मावती हैं।

ऑपरेशन सिन्दूर-

वर्तमान में भी हमारे राष्ट्र की सुरक्षा हेतु अनेक महिलाएँ अपने प्राण तक समर्पित करने हेतु तत्पर हैं। पाकिस्तान से चल रहे युद्ध के मध्य दो तेजोमयी महिलाओं सोफिया कुरैशी एवं व्योमिका सिंह ने टीवी पर सैनिक गतिविधियों का संक्षिप्त, तथ्यात्मक मौखिक सारांश प्रस्तुत किया। इस विषय में कईं जानकारी उन्होंने अपने परिवार से भी गोपनीय रखीं।

युधिष्ठिर का कुन्ती माता को श्राप- यह युधिष्ठिर द्वारा कुन्ती को दिए गए उस श्राप के उलट है, जिसमें उन्होंने स्त्रियों द्वारा कोई विषय रहस्य रूप न रख पाने की बात कही थी क्योंकि कुन्ती माता ने कर्ण उनका ही पुत्र है, यह किसी को नहीं बताया था।

18.44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं(म्), वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं(ङ्) कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥18.44॥

खेती करना, गायों की रक्षा करना और व्यापार करना - (ये सबके सब) वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं (तथा) चारों वर्णों की सेवा करना शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।

विवेचन-

वैश्यों एवं शूद्रों के निर्धारित कर्म-

कृषि, गौरक्षा, व्यापार, वैश्यों के स्वाभाविक कर्म हैं तथा शूद्रों का कर्म श्रम तथा अन्यों की सेवार्थ तत्पर रहना है।

मनुष्य अपने स्वभावगत विचारों के कारण ही कर्म करते हैं । धन आदि का व्यापार में सदुपयोग, तथा उसका संवर्द्धन एवं उसे समाज के अन्य वर्गों हेतु उपयोग सहित राष्ट्र निर्माण में सम्मिलित करना ही एक वैश्य का श्रेष्ठ कर्म है।

उदाहरणों द्वारा शूद्रों का समाज में महत्त्व एवं योगदान का स्पष्टीकरण-

विवेचक स्मरण करती हैं कि जब इलेक्ट्रिक बोर्ड में कार्य करते हुए, वे वहाँ अभियन्ता के पद पर कार्यरत थीं तब उन्होंने पचास डिग्री सेल्सियस में बिजली के खम्बे पर कार्य करते उन श्रमिकों को देखा, जिनके बिना वे कार्य असम्भव से प्रतीत होते थे। कोई बुद्धिजीवी वर्ग उस कार्य को करने की क्षमता ही नहीं रखता।

इसी प्रकार कोरोना काल में चिकित्सालयों में रोगियों की सेवा करते वे कर्मचारी भी अधिकांशतः स्मरण हो आते हैं, जिनकी अनुपस्थिति में इस युद्ध सदृश्य वातावरण में विजय प्राप्त करना असम्भव था।

विशेष बिन्दु-

अत: स्वयं हेतु मनुष्य को अपने अन्त:करण में श्रेष्ठता एवं तुच्छता का भाव न लाते हुए, स्वभावजनित अपने समस्त कर्मों को परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए क्योंकि यहीं से ही परमानन्द के प्रादुर्भाव का मार्ग प्रशस्त होता है।

18.45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः(स्), संसिद्धिं(म्) लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः(स्) सिद्धिं(म्), यथा विन्दति तच्छृणु॥18.45॥

अपने-अपने कर्म में प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा)को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त होता है? उस प्रकार को (तू मुझसे) सुन।

विवेचन-

मानव कर्मों द्वारा सिद्धि की प्राप्ति-

श्रीभगवान् कहते हैं कि जब मनुष्य स्वयं के स्वभाव के अनुसार कर्म करते हुए, अपने समस्त कार्यों को परमात्मा को समर्पित करता जाता है तब वह सिद्धि प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर होता है। मनुष्य द्वारा किया जाने वाला कर्म उसके आचार-विचार के अनुरूप होना चाहिए,
अत: वर्तमान समय में उसके कौशल को परखने हेतु अनेक परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। किसी मनुष्य के कौशल को पहचानने की यह प्रक्रिया प्राचीन काल में भी प्रचलित थी।

धृष्टद्युम्न द्वारा निकाला गया निष्कर्ष-

घटना उस काल की है, जब पञ्चाल कुमारी द्रौपदी के विवाह हेतु स्वयंवर का आयोजन किया गया था। राजा द्रुपद द्वारा अर्जुन को अपना दामाद बनाने के उद्देश्य से किए गए उस स्वयंवर में, विजय एक ब्राह्मण की हुई। उस ब्राह्मण से द्रौपदी के विवाह हेतु अपने पिता को चिन्तित देख धृष्टद्युम्न ने एक योजना बनाई, जिसमें स्वयंवर में विजयी उस ब्राह्मण की सच्चाई जानने हेतु उसके स्वभावजनित कौशल का परीक्षण किया गया।

एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। जिसमें उस ब्राह्मण सहित, उसके समस्त भ्राताओं को आमन्त्रित किया गया। उस प्रदर्शनी में पृथक-पृथक पण्डालों में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ जैसे किसी में वेद आदि, किसी में कृषि सम्बन्धित सामग्री तो किसी में अस्त्र-शस्त्र रखे गए। उन समस्त ब्राह्मणों का निरीक्षण किया गया कि सर्वप्रथम वे किस कक्ष में जाते है। क्षत्रिय स्वभावानुसार वे सभी सर्वप्रथम शस्त्रागार पहुँचे। जिसे देख राजा एवं उसका पुत्र यह समझ गए कि वे निश्चित ही क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण नही तथा उस अभेद्य लक्ष्य का भेदन करने वाले अर्जुन ही हो सकते हैं, कोई अन्य नहीं।

यह उदाहरण सिद्ध करता है कि तीनों गुणों के प्रभाव के निर्मित व्यक्ति का स्वभाव ही उसके द्वारा किए जाने कर्मों का निर्धारण करता है।

ज्ञानेश्वर महाराज इस सम्बन्ध में एक सुन्दर ओवी कहते हैं-

विहित कर्म पांडवा ।
आपुला अनन्य वोलावा ।
आणि हेचि परम सेवा ।
मज सर्वात्मकाची ॥

ईश्वर समस्त जीवों में आत्मा रूप में विराजमान हैं। उस परमात्मा की सेवा का एक उत्तम साधन मनुष्य द्वारा किए गए कर्म हैं, जिसमें रम कर, ईश्वर की निरन्तर स्तुति ही परमात्मा प्राप्ति का साधन है।

18.46

यतः(फ्) प्रवृत्तिर्भूतानां(म्), येन सर्वमिदं(न्) ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, सिद्धिं(म्) विन्दति मानवः॥18.46॥

जिस परमात्मा से सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) होती है (और) जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, उस परमात्मा का अपने कर्म के द्वारा पूजन करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- ज्ञानेश्वर महाराज इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि-

जया जें विहित।
तें ईश्वराचें मनोगत।
म्हणौनि केलिया निभ्रांत।
सांपडेचि तो ॥

भ्रान्ति रहित हो मनुष्य द्वारा श्रीभगवान् के मनोभावों को समझते हुए, उसके हेतु परमात्मा ने जिस कर्म का चयन किया है, वह करते हुए, अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है तब मनुष्य स्वतः ही पूर्णता को प्राप्त होता है।

श्रीभगवान् कहते है कि जो समस्त प्राणीमात्र का उद्गम स्थल है, जो सर्वव्यापी है, उस ईश्वर की उपासना करके मनुष्य अपना कर्म करते हुए सिद्धि, परम सिद्धि एवं आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

ज्ञानेश्वर महाराज पुनः कहते हैं-

तैसें स्वामीचिया मनोभावा ।
न चुकिजे हेचि परमसेवा ।
येर तें गा पांडवा ।
वाणिज्य करणें ॥

गीता परिवार (श्रीमद्भगवद्गीता जी का महा अनुष्ठान)-
जैसे गीता परिवार द्वारा सञ्चालित श्रीमद्भगवद्गीता जी के अध्ययन के इस महायज्ञ में अपने कर्मों द्वारा आहुति देना, परमात्मा की दिव्य सेवा है।

भगनी निवेदिता-

एक प्रसङ्ग के अनुसार भगनी निवेदिता बालकों को किसी पाठ की शिक्षा दे रही थीं तब उनसे पूछा गया, आप क्या पढ़ा रही हैं? उन्होंने बेहद ही अद्भुत उत्तर दिया। मैं कहाँ पढ़ा रही हूँ, मैं तो परमात्मा का अर्चन कर रही हूँ।

जब आपके द्वारा किए गए समस्त कर्म ईश्वर की आराधना बन जाए तो ईश्वर स्वतः ही अपने शुद्ध भक्तों हेतु प्रेममय दिव्य मार्ग, जो पूर्णता तक जीव को ले जाए, प्रशस्त करते हैं।

चिकित्सक, अभियन्ता, शिक्षक, गृहणी आदि सभी को अपने कर्मों को पूर्ण उत्तरदायित्व सहित करते हुए उन्हें ईश्वर को समर्पित करना चाहिए ताकि उनके समस्त कर्म दिव्यता से पूर्ण हो सकें।

इस श्लोक में श्रीभगवान् मनुष्य शब्द का प्रयोग करते हैं अर्थात् इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता जी मात्र हिन्दुओं का धार्मिक ग्रन्थ न होकर समस्त मानव जाति के उत्थान हेतु उच्चारित श्रीभगवान् की अमृत वाणी है।

मानव कर्म पुष्प सदृश्य सुगन्धित एवं कोमल होने चाहिए।श्रीभगवान् कदापि नहीं चाहेंगे कि ईश्वर के नाम पर मनुष्य किसी अन्य मनुष्य या जीव की हत्या जैसे निकृष्ट कर्म में लिप्त हो।

ऐसे हमारे लिए अनेक उदाहरण हैं जिसमें व्यक्ति ने अपने कर्मों को श्रीभगवान् को अर्पित कर महान सिद्धियाँ प्राप्त की। जैसे पण्डित जसराज, तानसेन के गुरु जी आदि। पण्डित जसराज जी माँ भगवती की अर्चना करते हुए, अपनी सङ्गीत आराधना से पूर्व माँ भगवती का न्यास करते थे।

इसके साथ ही विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्न उत्तर प्रारम्भ हुए ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - संगीता दीदी
प्रश्न - आतङ्कवादी इस प्रकार की हिंसक घटनाएँ क्यों करते हैं?
उत्तर - श्रीभगवान् कहते हैं कि हमें कोई भी गुण अनुवांशिकता के कारण मिलेगा या फिर अभ्यास के द्वारा। आतङ्कवादियों को यह अभ्यास कराया गया है। ऐसे ही वातावरण में वे पले बढ़े हैं। उन्हें यही सिखाया गया है कि जो हमारे ईश्वर को नहीं मानेगा अर्थात् वह ईश्वर जिसे वह मानते हैं उसे जो न माने उसको जान से मार दो या उसका धर्म परिवर्तन कर दो। हमारे यहाँ मुगलों ने भी यही किया।

हमारे देश में रहने वाले मुसलमान पहले सनातन धर्मी ही थे। उन्हें मुगलों ने ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया, उनका धर्म परिवर्तन किया गया और आज वह हमसे ही शत्रु भाव रख रहे हैं। उन मनुष्यों में परमात्मा का प्रकाश दब जाता है और ऐसा मनुष्य

अपनी चलाता है।

प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है और तभी वह राजसिक, तामसिक या सात्त्विक कहलाता है। यह तामसिक गुण है जिसकी वजह से निष्पाप और साधारण मनुष्यों की हत्याएँ हो रही हैं।
हमने अभी यह प्रसङ्ग देखा जिसके कारण यह ऑपरेशन सिन्दूर हो रहा है। वह प्रसङ्ग हम पढ़ भी नहीं सकते इतना भयावह है।

हमारे सनातन धर्म की शिक्षा है कि हमें सभी के साथ प्रेम से रहना है और उसी राह पर हम चल पड़े हैं। हमें सोचना चाहिए कि किसी को दुःख देकर मैं सुखी नहीं हो सकता।

हमें महाभारत के आलोक में और अर्जुन और श्रीकृष्ण भगवान् की मानसिक स्थिति को समझते हुए श्रीमद्भगवद्गीता पढ़नी चाहिए। तभी हम इसे अच्छे से समझ सकते हैं। श्रीभगवान् ने अर्जुन को युद्ध छोड़ने नहीं दिया। संसार के कल्याण के लिए यदि हिंसा करनी भी पड़े तो वह अहिंसा ही है। सीमा पर अपने देश की रक्षा करने के लिए हमारे सैनिक हिंसा कर रहे हैं, परन्तु देश हित के लिए किया जाने के कारण वह अहिंसा ही कहलाएगी। यह बात हम गीता जी के आलोक में समझ सकते हैं।

प्रश्नकर्ता - शोभा दीदी
प्रश्न - आपने जो सोलह स्तम्भ बताएँ हैं वह मुझे दोबारा से बता दीजिए।अन्तिम चार स्तम्भ क्या हैं?
उत्तर - हमारी वैदिक परम्परा सोलह स्तम्भों पर स्थापित है, वे हैं-
चार पुरुषार्थ- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष
चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र
चार आश्रम- ब्रहचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास
चार साधना मार्ग- ज्ञान, भक्ति, कर्म एवं योग।

हमें धर्म और मोक्ष प्राप्त करने के लिए सही राह पर चलना चाहिए। हम अपने जीवन को नियम पूर्वक चलाएँगे तो अन्ततोगत्वा हमें मोक्ष की प्राप्ति होगी। आत्मिक समाधान और शान्ति के बीच में ही हमारी सब इच्छाएँ पूरी होनी चाहिए।

यदि मनुष्य सिर्फ अर्थ और काम के पीछे लगे रहेगा तो फिर धर्म और मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसा करने से मनुष्य अपने नैतिकता को भूल जाता है। वह अधर्म करने लगता है।

अर्थ और काम पर अधिक ध्यान न देते हुए धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना ही मोक्ष है। सम्पन्नता और कामनाओं की पूर्ति भी आवश्यक है पर निश्चित दायरे में ही। हमारा सनातन धर्म भी हमें यही सिखाता है।

इसके उपरान्त श्रीहनुमान चालीसा पाठ के साथ आज के सुन्दर विवेचन सत्र का समापन हुआ।

ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||